ओ३म्

27th August, 2014

आर्य जीवन

ఆర్య జీవన్

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

गुरुकुल घटकेश्वर के हीरक जयन्ती समारोह को आगे बढ़ाया गया

POSTPONED

గురుకులు ఘటకేశ్వర్ వజ్రోత్సవ సభలు వాయిదా

31 ఆగష్టు 2014 ఆదివారం నాడు జరుపుటకు నిశ్చయించిన

గురుకులు ఘటకేశ్వర్ వజ్రోత్సవ సభలను

వాయిదా వేయడం అయినది

1వ, 2వ సెప్టెంబర్ నాడు పం. బన్సీలాల్ వ్యాస్ గారి వర్ధంతి సమావేశాలు యథావిధిగా జరుగుతాయి.

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र. तेलंगाना के तत्वावधान में दि. ३१ अगस्त २०१४ रविवार के दिन गुरूकुल घटकेश्वर में स्व. पंडित बन्सिलाल व्यास जी द्वारा स्थापित गुरुकुल घटंकेश्वर का हीरक जयन्ती समारोह बडे ही धूम-धाम से मानाया जाना तय था।

इस में समूचे देश की आर्य समाजों, आर्य शिक्षण संस्थाओं एवं गुरुकुलों से सम्बन्धित सभी अधिकारी, आचार्य एवं शिक्षकों को आमंत्रीत किया गया था पर नवगठित तेलंगाणा प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री कें. चन्द्रशेखर राव जी ने अपनी असुविधा तथा गुरुकुल घटकेश्वर के पुर्ननिर्माण तक हीरक जयन्ती समारोह को मनाया जाना उचित नही समझा ।

अतः गुरुकुल घटकेश्वर के हीरक जयन्ती समारोह को दिसंबर २०१४ तक के लिए आगे बढाये जाने का निर्णय लिया गया। जब भी कार्यक्रम की तिथियां तय की जायेंगी आप सभी को पुनः सूचित किया जायेंगा। आप सभी से निवेदन है कि ३१ अगस्त २०१४ की तिथि को रद्ध समझे और आगे के लिए अभी से तय्यारी करे। १ और २ सितम्बर २०१४ को गुरुकुल परिसर में पं. बंसिलाल व्यास जी की पुण्य तिथि यथाविधि मनाई जायेगी।

निवेदक

प्रधान मंत्री

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र. - तेलंगाना

महर्षि दयानन्द मार्ग, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद - ९५

'क्या महर्शि दयानन्द ने वेद जर्मनी या इंग्लैण्ड से मंगाये थे?'

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

महर्शि दयानन्द ने 10 अप्रैल 1875 ई. को आर्य समाज की स्थापना की थी। आर्य समाज का तीसरा नियम है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। आर्य समाज का पहला नियम विज्ञान की दर्शिट से अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसमें कहा गया है कि सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका आदि मूल परमेष्वर है। इस नियम को अभी यूरोप के वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार किया जाना है। वैज्ञानिकों ने पर्थिवी व अन्य ग्रहों का अध्ययन कर अनेक नये तथ्यों का उद्घाटन किया है परन्तु वह अभी तक सर्शिट की उत्पत्ति का सर्वमान्य व सर्व स्वीकार्य मत या सिद्धान्त बता नहीं पाये। हमें लगता है कि आर्य समाज का प्रथम नियम विज्ञान सम्मत व सर्शिट नियम के अनुकूल व अनुरूप है और भविश्य में विज्ञान इस नियम की अवष्यमेव पुश्टि करेगा। वेद का एक अर्थ ज्ञान होता है जो प्रायः विद्या के पर्याय के रूप में ही अधिकतर प्रयोग किया जाता है। अब यदि समस्त ज्ञान व विद्या का आदि मूल परमेष्वर है तो सर्शिट के आरम्भ व आदि काल में अमैथुनी सर्शिट के प्रथम व आदि मनुश्यों, स्त्री व पुरूशों को, उससे ज्ञान व विद्या का मिलना इसलिए स्वीकार करना होगा कि अन्यथा होने पर मनुश्य अज्ञानी व मूर्ख रहेगा और ईष्वर ज्ञान न देने से सर्वषक्तिमान व धर्मात्मा न होकर ज्ञान प्रदान करने में असमर्थ कहा जायेगा। विचार करने पर ज्ञात होता है कि ऐसा किंचित नहीं है, ईष्वर सर्शिट की आदि में चार वेदों के रूप में आदि चार ऋशियों को ज्ञान देता है, यह प्रत्यक्ष भी है और तर्काश्रित भी है। विचार, चिन्तन, मनन, युक्ति व तर्क से भी यही परिणाम निकलता है कि वेद अर्थात् वेदों में निहित ज्ञान का आदि मूल परमेष्वर है जिसका कारण वेदों का ज्ञान तो सर्शिट में सत्य–सत्य दिखाई दे रहा है साथ ही वेदों की भाशा सर्वोत्कश्ट है जिसके समान संसार की कोई भाशा नहीं है। महर्शि दयानन्द वेदों की आनुपूर्वी अर्थात् वेद के अक्षरों, षब्दों के कम, उनके अर्थ व सम्बन्धों को भी नित्य अर्थात् सर्वत्र, सदा, सर्वदा, इस कल्प, पूर्व कल्पों, आगे के कल्पों या भविश्य में उत्पन्न होने वाली सभी सर्शिटयों की उत्पत्ति व रचनाओं में भी हर प्रकार से एक समान मानते हैं। उनके पास इसका एक सषक्त प्रमाण यह है कि ईष्वर पूर्ण ज्ञानी अथवा सर्वज्ञ है। उसका ज्ञान हमेषा एक जैसा रहता है, वह कम या अधिक नहीं होता। अतः उसका ज्ञान पहले भी ऐसा था, अब भी है और आगे भी ऐसा ही रहेगा। उसमें वर्शद्धि व क्षय की किंचित भी सम्भावना नहीं है। संसार में वेद से प्राचीन अन्य कोई पुस्तक नहीं है। हमारे दर्शन, उपनिशद्, मनुस्मर्शति आदि जितने भी ग्रन्थ हैं, इनका मूल व मुख्य आधार भी चार वेद, ऋग्, यजु, साम व अथर्व वेद हैं। आर्यों ने सर्शिट की उत्पत्ति के पहले ही दिन से काल गणना करना आरम्भ कर दिया था जिसके अनुसार वर्तमान में सर्शिट व वेद सम्बत् का 1,96,08,53,115 हवां वर्श चल रहा है। अब से लगभग 5000 वर्श पूर्व महाभारत का प्रसिद्ध युद्ध हुआ था। इसके बाद ज्ञान के क्षेत्र में अन्धकार का युग आरम्भ हुआ जो समय व्यतीत होने के साथ तीव्र से तीव्रतर और तीव्रतर से तीव्रतम होता गया।

महाभारत के बाद वेदों का पढ़ना–पढाना कम होता गया। कालान्तर में अज्ञान की यह स्थिति हुई कि लोगों ने वैदिक साहित्य को भुलाकर 18 पुराणों की रचना कर डाली और इसके अनुसार जीवनयापन को ही धर्म व कर्तव्य की संज्ञा दी गई। वेदों के लिए जो पुराण षब्दों का प्रयोग वैदिक ग्रन्थों में किया गया है उसे यह मन्दबुद्धि पूर्वज वेदों के स्थान पर पुराणों पर घटाने लगे। ऐसी स्थिति में वेदों का प्रयोग क्षेत्र सीमित हो गया और वेदों को यथार्थ रूप में जानने व समझने में बहुत कम अध्येताओं का पहुंचना हो पाता था। महर्शि दयानन्द के समय सन् 1824–1883 में वेद व अन्य वैदिक ग्रन्थ यद्यपि विद्यमान थे परन्तु वह अध्येताओं की पहुंच में नहीं थे। बीच में सायण और कुछ वेदभाश्यकार हुए जिन्होंने यह माना कि वेदों का आषय केवल यज्ञों व अग्निहोत्रों को करने–कराने में ही है। इसमें उन्होंने अपने समकालीन

व उससे पूर्व के सभी प्रकार के अज्ञान, अन्धविष्वास, पाखण्ड एवं कुरीतियां सम्बन्धी मान्यताओं का प्रक्षेप व विधान किया। वेदों के मन्त्रों को न समझकर भ्रम–वष यज्ञों में पषु हिंसा का प्रयोग किया जाने लगा जिसके विरूद्ध बौद्ध मत के प्रवर्तक भगवान बुद्ध व जैन मत के प्रवर्तक स्वामी महावीर ने षंखनाद किया। इस कारण से वेद तिरस्कष्त हो गये और इनका पठन–पाठन धीरे–धीरे बन्द हो गया। इसके बाद स्वामी षंकराचार्य का आविर्भाव हुआ जिन्होंने इन नास्तिक मतों का पराभव किया। इस प्रकार समय व्यतीत होते–होते सन् 1857 का वर्श आ गया जब हमारा अखण्ड देष अंग्रेजों का गुलाम था। सौभाग्य से मथुरा में प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती एक संस्कष्त पाठषाला चलाते थे। अक्तूबर–नवम्बर, सन् 1860 में उनके चरणों में पहुंच कर स्वामी दयानन्द ने उनसे संस्कष्त के आर्श व्याकरण का अध्ययन किया और अपने योग आदि के अभ्यास व अनुभवों तथा गुरूजी के पारगामी ज्ञान के कारण वह वेदों के यथार्थ स्वरूप, आषय व अर्थों को जान सके। गुरूजी ने आर्श ज्ञान व अनार्श ज्ञान की कसौटी स्वामी दयानन्द को बताई और यह भी प्रमाण पुरस्सर सिद्ध किया कि मूर्तिपूजा, गंगा स्नान, मष्तकों का श्राद्ध, फलित ज्योतिश, जन्म पर आधारित जांति–पांति व्यवस्था, स्त्री व अषिक्षित–षूद्रों का वेदों के अध्ययन में अनाधिकार, बेमेल विवाह, सतीप्रथा आदि सब पाखण्ड हैं। इन व ऐसे पाखण्डों का धर्म, वेद व आर्श साहित्य से कोई लेना देना नहीं है। यह प्रथायें मिथ्या ज्ञान के कारण स्थापित व आरम्भ हुई हैं जिन्हें वेदों के ज्ञान के प्रचार व प्रसार के द्वारा समाप्त किया जा सकता है और किया जाना चाहिये। भारत की पराधीनता का कारण भी वेद ज्ञान का तिरस्कार व उसका विलुप्त होना ही रहा है। अन्य कारणों में पुराणों के आधार पर धार्मिक अन्धविष्वासों का जीवन व व्यवहार में होना है। स्वामी दयानन्द का अध्ययन पूरा हुआ और दक्षिणा का समय आया। गुरूजी ने स्वामीजी को अपना जीवन वेदों के ज्ञान का प्रचार–प्रसार व अनार्श ग्रन्थ पुराणों के प्रचार से उत्पन्न अज्ञान–जनित अन्ध–परम्पराओं को मिटाने में लगाने के लिए समर्पित करने की इच्छा, आग्रह व आज्ञा के रूप में निवेदन किया। स्वामीजी ने गुरूजी की आज्ञा स्वीकार कर उन्हें उनकी आज्ञा व इच्छा के पालन करने का वचन दिया और अपने मिषन को पूरा करने के लिए अप्रैल–मई, 1863 में गुरू से विदा लेकर आगरा की ओर निकल पड़े।

अज्ञान, अविद्या, धार्मिक अन्धविष्वास, कुरीतियां, सभी प्रकार की मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिश, ईष्वर के अवतार की अज्ञानपूर्ण मान्यता, नदियों में स्नान कर पुण्य मानना, अमरनाथ, अयोध्या, द्वारिका, अनेक माताओं के नाम से विख्यात मन्दिर आदि को तीर्थ मानना और वहां कि यात्रा को पुण्य कार्यों में रखना व इनसे अपने मनोरथों की पूर्ति आदि की मान्यताओं का खण्डन व सत्य का प्रकाष व मण्डन करना उनका उद्देष्य बन गया था। हिन्दुओं की परम आस्था सष्श्टि के आरम्भ काल से वेदों में रही है और आज भी है। वेदों के ईष्वर रचित होने पर किसी भी हिन्दू व आर्य को आपत्ति नहीं है। यह दोनों को एक सूत्र में जोड़ता है। इसका प्रयोग कर स्वामीजी ने मूर्तिपूजा का खण्डन करना आरम्भ किया और इसके स्थान पर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वषक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी, दयालु, अनादि, अजन्मा, अनन्त, अमर, अविनाषी, अजर, अभय, नित्य व पवित्र स्वरूप वाले ईष्वर की योग साधना विधि से स्तुति, प्रार्थना व उपासना का विधान किया। आपका प्रथम ग्रन्थ ईष्वरोपासना पर ही था जिसे आदि सन्ध्या कहा जाता है। इस ग्रन्थ को स्वामी दयानन्द ने आगरा प्रवास में लिखा था। मूर्तिपूजा का खण्डन यद्यपि युक्तियों व तर्क आदि के द्वारा भी हो जाता है परन्तु पौराणिक जनता को इनसे सन्तुश्ट कराना सम्भव नहीं था। अतः महर्शि दयानन्द ने वेदों को आधार बना कर अक्तूबर–नवम्बर, 1869 में घोशणा की ईष्वर रचित वेदों में मूर्तिपूजा का कहीं विधान नहीं है, अतः मूर्तिपूजा करना अकर्तव्य है। अब ऐसी घोशणा करने पर यह सम्भव था कि कोई भी विरोधी उनसे पूछ सकता था कि आप वेद दिखाईये और बताईयें कि वेदों में ईष्वरोपासना के लिए ईष्वर ने क्या विधान किया है। अतः यह सिद्ध होता है कि महर्शि के पास वेद अवष्य थे तभी उन्होंने वेदों से मूर्तिपूजा का विधान सिद्ध करने की चुनौती दी थी। यह भी अनुमान होता है कि उन्होंने अपने अध्ययन काल में गुरू विरजानन्द जी के पास वेद देखें, सुने व पढ़े थे। यही

कारण था कि उन्होंने यह अभूतपूर्व घोशणा की और अपने वचन को सत्यापित करने के लिए उन्होंने विरोधी व इच्छुक विद्वानों को वेद अवष्य दिखायें होगें। हमारा यहां यह कहने का अर्थ है कि यदि महर्शि के पास वेद न होते तो वह मूर्ति पूजा को वेद विरूद्ध कहने का साहस नहीं कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में हम महर्शि दयानन्द के पं. लेखराम रचित जीवन चरित से दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। पहला उदाहरण सन् 1864 का है जिसे "वेदों की खोज में धौलपुर की ओर प्रस्थान" षीर्शक दिया गया हैं। इस उदाहरण में कहा गया है कि "एक दिन स्वामी जी ने पंडित सुन्दरलाल जी से कहा कि कहीं से वेद की पुस्तक लानी चाहिए। सुन्दर लाल जी बड़ी–खोज करने के पष्चात् पंडित चेतोलाल जी और कालिदास जी से कुछ पत्रे वेद के लाये। स्वामीजी ने उन पत्रों को देखकर कहा कि यह थोड़े हैं, इनसे कुछ काम न निकलेगा। हम बाहर जाकर कहीं से मांग लावेंगे। आगरा में ठहरने की अवस्था में स्वामीजी समय–समय पर पत्र द्वारा अथवा स्वयं मिलकर विरजानन्द जी से अपने सन्देह निवष्त कर लिया करते थे।" इस विवरण से यह ज्ञात होता है कि उन दिनों सम्भवतः स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी के पास व देष में अन्यत्र अनेक स्थानों पर वेद उपलब्ध थे। इसी लिए उन्होंने कहा कि हम बाहर जाकर कहीं से मांग लावेंगे। हम यहां इतना और कहना चाहते थे कि घर छोड़ने से लेकर स्वामी विरजानन्द जी के पास पहुंचने तक स्वामी दयानन्द जी ने सत्य व ज्ञान की खोज करते हुए देष भर के पुस्तकालयों व संग्रहालयों को छाना था। वहां उन्हें यत्र–तत्र व कहीं न कहीं वेद अवष्य देखने को मिले होगें। अतः विरजानन्दजी के यहां अध्ययन करने पर उन्हें पता रहा होगा कि कहां कहां वेद मन्त्र सहितायें उपलब्ध हैं। हम अनुमान से यह भी कहना चाहते है कि महाभारत के बाद भारत में वेद मन्त्र संहिताओं का प्रकाषन स्वामी दयनन्द व उनके अनुयायी आर्य समाज ने ही किया और आज भी कर रहा है।

पं. लेखराम रचित जीवन चरित में सन् 1867 की यह घटना भी दी गई है। षीर्शक है कि "उन्हें केवल वेद ही मान्य थे–स्वामी महानन्द सरस्वती, यह स्वामी महानन्द जी उस समय दादूपंथ में थे––इस कुम्भ पर स्वामीजी से मिले। उनकी संस्कष्त की अच्छी योग्यता है। वह कहते हैं कि स्वामी जी ने उस समय रूद्राक्ष की माला, जिसमें एक–एक बिल्लौर या स्फटिक का दाना पड़ा हुआ था, पहनी हुई थी; परन्तु धार्मिक रूप में नहीं। हमने वेदों के दर्षन, वहां स्वामी जी के पास किये, उससे पहले वेद नहीं देखे थे। हम बहुत प्रसन्न हुए कि आप वेद का अर्थ जानते हैं। उस समय स्वामीजी वेदों के अतिरिक्त किसी को (स्वतः प्रमाण) न मानते थे।" इस प्रमाण से यह स्पश्ट है कि सन् 1867 व उससे पहले से स्वामी जी के पास वेद उपलब्ध थे। हम यह भी बताना चाहते हैं कि स्वामी महानन्द सरस्वती देहरादून में रहते थे। स्वामी दयानन्द जी से मिलने के बाद उन्होंने देहरादून स्थिति अपने "महानन्द आश्रम" को 'महानन्द आश्रम अर्थात् आर्य समाज' का नाम दिया था। हम इसी आर्य समाज के सदस्य रहे हैं। आज यह आर्य समाज धामावाला, देहरादून के नाम से विद्यमान है।

अब हम स्वामी दयानन्द जी द्वारा लन्दन या जर्मनी से वेद मंगाये जाने की चर्चा करते हैं। हम यह जानते हैं कि स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाष आदि के लेखन के बाद वेदों का भाश्य भी आरम्भ किया था। भाश्य करने से पूर्व उन्हें यह ज्ञात होना आवष्यक था कि उनसे पूर्व कौन–कौन से लोग वेदों का भाश्य कर चुके हैं और उनके भाश्यों की स्थिति कैसी है? इस प्रष्न के उत्तर में उन्हें यह जानकारी मिली होगी कि इंग्लैण्ड में प्रो. मैक्समूलर ने ऋग्वेद का भाश्य किया है व अन्य कुछ ग्रन्थ भी वेदों पर लिखे हैं। मैक्समूलर के नाम का उल्लेख महर्शि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाष और अपनी चारों वेदों के भाश्य की भूमिका, ऋग्वेदादिभाश्य भूमिका ग्रन्थ, में किया है। अतः यह प्रायः सुनिष्चित है कि ऋशि दयानन्द ने पहले मैक्समूलर के ऋग्वेद भाश्य के बारे में पता किया होगा और फिर उन्हें मंगाया होगा। इस सम्बन्ध में हमने 9 व 10 जुलाई, 2014 को वैदिक यन्त्रलाय के प्रबन्धक श्री मोहनचन्द तंवर से दूरभाश पर बातचीत की। उन्होंने बताया कि परोकारिणी सभा के पुस्तकालय में प्रो. मैक्समूलर द्वारा सम्पादित सायण के ऋग्वेद भाश्य के 4 खण्ड हैं जो लन्दन के छपे हुए हैं। इनमें ऋग्वेद के आठवें मण्डल तक का भाश्य है। इनका आकार भी बड़ा है और पहले दो खण्डों में तो प्रति खण्ड 1000 पश्ठों से अधिक पश्ठ हैं। सभा के

पुस्तकालय में लन्दन में ही छपी हुई चारों वेदों की मूल संहितायें भी अलग–अलग खण्डों में हैं जिसमें पद–पाठ भी दिया गया है। इन सब ग्रन्थों का प्रकाषन लन्दन में ऋशि के देहावसान से काफी पहले हो चुका था। अतः सम्भव है कि इन ग्रन्थों को महर्शि दयानन्द ने ही अपने जीवनकाल में लन्दन या जर्मनी से मंगवाया होगा। यह भी सम्भव है कि लन्दन में मैक्समूलर के ऋग्वेदभाश्य के प्रकाषन के बाद कुछ व अधिक प्रतियां भारत भेजी गईं होंगी और परोपकारिणी सभा, अजमेर में मैक्समूलर द्वारा ऋग्वेद के सम्पादित भाश्य की जो अंग्रेजी की प्रतियों का एक सैट है, वह महर्शि दयानन्द जी ने भारत में ही कहीं किसी व्यक्ति या पुस्तक विक्रेता आदि से प्राप्त किया हो।

आर्यजगत के ख्याति प्राप्त युवा विद्वान डा. विवेक आर्य जी से दूरभाश पर इस लेख के तथ्यों के बारे में हमारी बात हुई। उन्होंने इस विशय की जानकारी देते हुए बताया कि महर्शि के भक्त षाहपुराध ीष नाहरसिंह जी ने जर्मनी की बर्लिन यूनिवर्सिटी से वेदों की मन्त्र संहितायें महर्शि के कहने पर मंगवाई थी। महर्शि इन संहिताओं से अपनी संहिताओं का मिलान कर यह पुश्टि करना चाहते थे कि दोनों में समानता है अथवा नहीं। मिलान करने के बाद यह वेद संहितायें लौटा दी गई थी। हमारे पूछने पर आपने यह भी बताया कि अंग्रेज अधिकारी प्राचीन पाण्डुलिपियों के संरक्षण में बहुत सावधान थे। उन्हें कहीं भी कोई प्राचीन पाण्डुलिपि का पता चलता था तो वह उसे प्राप्त कर सुरक्षित कर लेते थे। उन्होंने कोलकत्ता, अडियार आदि कई पुस्तकालयों के नाम लिये जहां उनके द्वारा बड़ी संख्या में पाण्डुलिपियां का संग्रह उपलब्ध है। पाण्डुलिपि के धारक बनेजव. कपंद को वह साम, दाम, प्रलोभन व दण्ड आदि का प्रयोग करके उनसे पाण्डुलिपि प्राप्त करते थे। उन्होंने बताया कि कोलकत्ता की रायल इंस्टिटयूट सोसायटी के पुस्तकालय में 5 लाख पाण्डुलियां हैं जिसके इण्डेक्स की पुस्तकों के ही 50 खण्ड है। उन्होंने विगत वर्श कोलकत्ता जाकर पुस्तकालय को देखा है। उन्होंने यह भी बताया कि अंग्रेज इन पाण्डुलिपियों को मुद्रित व प्रकाषित भी करते थे। प्रकाषन के दो मुख्य स्थान थे, एक कोलकत्ता में और दूसरा लन्दन। वेदों की बर्लिन पहुंचने की कहानी यह हो सकती है कि या तो वह कोलकत्ता से या फिर लन्दन से वहां पहुंची होंगी। उन्होंने यह भी बताया कि यह प्रसंग डा. भवानीलाल भारतीय की पुस्तक "नवजागरण के पुरोधा" में वर्णित है। हमने प्रकरण ढूंढा परन्तु अभी हमें यह मिला नहीं है। इसके बाद भी हमारा यह प्रष्न अनुत्तरित है कि महर्शि दयानन्द ने मैक्समूलर के जिस ऋग्वेद भाश्य की आलोचना की है, वह उन्हें कहां से प्राप्त हुआ था। महर्शि ने यह भाश्य या अनुवाद पढ़ा अवष्य था। इसकी प्राप्ति के दो ही स्थान हो सकते हैं, एक भारत व दूसरा इंग्लैण्ड। डा. विवेक आर्य ने हमें यह भी बताया कि महर्शि दयानन्द ने मैक्समूलर के वेदभाश्य को लन्दन से मंगवाया था। भाश्य लन्दन या जर्मनी कहीं से भी मंगवाया गया हो, परन्तु यह तो सिद्ध है कि लन्दन में प्रकाषित वेद विदेष से मंगवाये गये थे। हम आदरणीय डा. विवेक आर्य का जानकारी देने के लिए हार्दिक ध न्यवाद का करते हैं।

यहां एक सम्भावना यह है कि वेद और इसका सायण भाश्य हस्तलिखित पाण्डुलिपि के रूप में मैकाले द्वारा भारत से मैक्समूलर को लन्दन पहुंचाया गया होगा और वहां लन्दन में मैक्समूलर द्वारा सम्पादित होकर इसका प्रकाषन हुआ हो। प्रकाषन के बाद किसी प्रकार से यह इंग्लैण्ड से जर्मनी पहुंच गये होगा जो कि सम्भव है। हम यह भी अनुमान करते हैं कि सम्भवतः मैकाले द्वारा ही इस वेदभाश्य को भारत लाया गया था। हम पहले लिख चुके हैं कि यह हो सकता है कि यह भारत में पुस्तक विक्रेताओं के पास उपलब्ध रहे हों और उनसे महर्शि दयानन्द के किसी अनुयायी ने प्राप्त कर उन्हें दयानन्दजी को उपलब्ध कराया हो। महर्शि दयानन्दजी को क्योंकि अपने वेदभाश्य की रचना करनी थी अतः उन्हें यह देखना था कि इस चर्चित भाश्य में मैक्समूलर ने महाभारत काल व उससे पूर्व की वेदभाश्य या मन्त्रार्थ पद्धति को अपनाया है या सायण, महीधर, रावण व उव्वट की वेदार्थ प्रकिया व परम्परा का आश्रय लिया है?

आईये, महर्शि दयानन्द का अपनी लेखनी से लेखबद्ध एक लेख देखते हैं। इस उद्धरण उन्होंने अपने वेदभाश्य की ग्रिफिथ, टानी, हशीकेष व भगवान दास आदि की आलोचनाओं का उत्तर दिया है। महर्शि के इस उत्तर से दो उद्धरण प्रस्तुत कर रहे

हैं। प्रथम उद्धरण—'पांच हजार वर्श के लगभग से वेदविद्या जाती रही। महाभारत से पहले इस देष में सब विद्या ठीक–ठीक प्रचलित थी। परन्तु पीछे से पढ़ने–पढ़ाने के ग्रन्थ और रीति बिल्कुल बदल गई। तब से अब तक वही अषुद्ध प्रणाली प्रचरित है। यद्यपि कहीं–कहीं के लोग वेदादिक सत्य ग्रन्थों को कण्ठ कर लेते हैं, परन्तु उसके षब्दार्थ को कोई भी नहीं जानता। न ऐसे कोई व्याकरणादिक ग्रन्थ अर्थसहित पढ़ाये जाते हैं, जिन से वेदों का अर्थ हो सके। आधुनिक जो महीधर आदि के बनाये हुए वेदभाश्य देखने में आते हैं, वे महाभ्रश्ट और अन्धकार के बढ़ाने वाले हैं। उनके देखने वालों को मद्रचित भाश्य ठीक समझ में नहीं आता।' दूसरा उद्ध रण—'उवट, सायण, महीधर व रावण आदि के रचे हुए भाश्य प्राचीन भाश्यों से सर्वथा विपरीत हैं। केवल इन्हीं भाश्यों का उलथा (अनुवाद) अंग्रेजी में विलसन (मोनियर विलसन) और मैक्समूलर आदि प्रोफेसरों ने किया है। इसलिये मैं उनके भाश्यों को भी षुद्ध और न्यायकारी नहीं कह सकता। इन्हीं ग्रन्थों के कारण ग्रिफिथ साहब आदि लोग भी सन्देह–मार्ग में पड़े हैं, और मुझको यह कहकर दूशित करते हैं कि स्वामीजी ने अर्थ पलटकर अपने प्रयोजन के सिद्धार्थ दूसरे ही अर्थ नियत किये हैं।' यहां महर्शि दयानन्द ने प्रकारान्तर से यह कहा है उन्होंने मैक्समूलर द्वारा अंग्रेजी में किये गये सायण के भाश्य के अनुवाद को देखा व समझा है और वह उसे षुद्ध व न्यायकारी नहीं कह सकते। सायण आदि के भाश्य के कारण मैक्समूलर आदि विद्वान सन्देह मार्ग में पड़े हैं और उन पर यह मिथ्या आरोप लगाते हैं कि उन्होंने अर्थात् स्वामी दयानन्द ने अर्थ पलटकर अपने प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए दूसरे मिथ्या अर्थ नियत किये हैं। महर्शि की इन पंक्तियों से सिद्ध है कि उन्होंने अपनी आलोचना से पहले ही मैक्समूलर के भाश्य को मंगा कर भावी आलोचनाओं के उत्तर की तैयारी कर ली थी। हम यहां महर्शि द्वारा अपने लेख में उद्धष्त मैक्समूलर रचित "हिस्टरी आफ ऐन्षण्ट संस्कष्त लिटरेचर" पष्ठ 567 का उदाहरण भी देते हैं। इससे भी यह सिद्ध है कि महर्शि ने मैक्समूलर के उनके ऋग्वेदादि भाश्य से इतर ग्रन्थों का सग्रंह भी किया था। हमें लगता है कि 'हिस्टरी आफ ऐन्षण्ट संस्कष्त लिटरेचर' का प्रकाषन भी सम्भवतः इंग्लैण्ड से ही हुआ होगा और उन्होंने इस ग्रन्थ को भी वहां से मंगवाया होगा। अपने वेदभाश्य की आलोचना में महर्शि दयानन्द ने एक महत्वपूर्ण स्पश्टीकरण और भी दिया है जिसे प्रस्तुत करने के लोभ का संवरण हम कर रहे हैं। वह यह है—'अन्त पर सी.एच. टानी साहब, एम.ए. प्रिन्सिपल प्रेसीडेन्सी कालिज कलकता की जो यह सम्मति है कि मैंने जो भाश्य बनाया है, वह इस कारण से रचा है कि सायण और अंगरेजी उल्थाकारों (अनुवादकों) के भाश्य कट जावें, अर्थात् अषुद्ध ठहरें। सो इस विशय में मैं कभी दूशित नहीं हो सकता हूं। यदि सायण ने भूल की है, और अंगरेजों ने उसको अपना मार्ग–प्रदर्षक जानकर अंगीकार कर लिया तो भले ही करें, परन्तु मैं जानबूझ कर कभी भूल का काम नहीं कर सकता। परन्तु मिथ्या मत बहुत काल तक नहीं ठहर सकता, केवल सत्य ही ठहरता है। और असत्य सत्यता के सन्मुख षीघ्र ही धुमैला हो जाता है।' कृ आगे वह लिखते हैं—'मेरा वेदभाश्य महाभारत के पूर्व के भाश्यों के प्रमाणों को देने के कारण, और योरोपीय विद्वानों के विचारों के विरूद्ध होने के कारण गवेशणा का एक ऐसा भाव उत्पन्न कर देगा कि जिससे सत्य प्रकट हो जायगा। और हमारे विद्यालयों में सदाचार के भाव को उत्पन्न करेगा। इसी कारण सरकार की संरक्षता का अधिकारी है।' यह उद्धरण रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत द्वारा प्रकाषित दयानन्दीय–लघुग्रन्थ–संग्रह (सम्पादक पं. युधिश्ठिर मीमांसक) से साभार प्रस्तुत किये गये हैं। एक अन्य उद्धरण हम पं. युधिश्ठिर मीमांसक की पुस्तक 'मेरी दषश्टि में स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनका कार्य' के पष्ठ 95 से प्रस्तुत कर रहे हैं—'संस्कष्त वाडंमय पर षोध (रिसर्च) करने हारे मैक्समूलर, मोनियर विलियम्स प्रभषति विद्वानों ने सम्पूर्ण षोध कार्य, यहां तक कि संस्कष्त इंग्लिष कोष निर्माण का कार्य इसलिये किया कि उससे भारतीयों को ईसाई बनाने में सरलता होगी।'

हम आषा करते हैं कि लेख में चर्चित जानकारी सभी पाठकों के लिए उपयोगी होगी। अन्य तथ्यों के उपलब्ध होने पर इसे संषोधित किया जा सकता है। हम आषा करते हैं कि महर्शि दयानन्द के द्वारा जर्मनी से वेदों को मंगाने के विशय पर इस लेख की पंक्तियों से किंचित प्रकाष पड़ता है जिससे पाठकों को अवष्य कुछ लाभ होगा।

'वेदों का जन समान्य में प्रचार व प्रसार'

—मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

वेदों के जन–सामान्य में प्रचार करने से पूर्व हमें वेदों के महत्व व इनकी आज के समय मे प्रासंगिकता को जानना व समझना है। **संक्षेप में वेदों के बारे में कहें तो वेद का अर्थ ज्ञान व जानना होता है।** वेदों के नाम से चार पुस्तकें अथवा संहितायें मिलती हैं जो **ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद** के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका लेखक कोई मनुश्य नहीं है। परम्परा से इन्हें ईष्वरीय ज्ञान स्वीकार किया जाता है। महर्शि दयानन्द के सामने भी यह प्रष्न उपस्थित हुआ कि क्या वेद ईष्वरीय ज्ञान है? उन्होंने इसका गहन चिन्तन किया। वह वेदों के पारदर्षी विद्वान थे। देष भर का उन्होंने भ्रमण किया था और देष के सभी ज्ञानी व धार्मिक विद्वानों से उनका सान्निध्य रहा व उन्होंने सबसे वार्तालाप किया। उन्हें अपने भ्रमण में जहां कहीं धर्म से सम्बन्धित कोई प्राचीन संस्कष्त या अन्य किसी भाशा में ग्रन्थ मिलते थे तो वह उनका अध्ययन करते थे। इसके साथ ही महर्शि दयानन्द उच्च कोटि के योगी भी थे। उन्हें समाधि सिद्ध थी और वह प्रातः व रात्रि में समाधि में ईष्वर का साक्षात्कार किया करते थे। उनको यह भी सुविधा थी कि जिन प्रष्नों के उत्तर उन्हें उपलब्ध ग्रन्थों में नहीं मिलते थे उन्हें वह समाधि ा में ईष्वर से जान लेते थे। इस प्रकार से उन्होंने वेदों के बारे में सभी प्रकार के प्रष्नों का समाधान प्राप्त किया था। उनका निकर्श था कि वेद सषश्टि की आदि में ईष्वर से चार ऋशियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को प्राप्त ज्ञान है जो सब सत्य विद्याओं से युक्त हैं। उन्होंने परीक्षा कर इस तथ्य को सत्य पाया था। वेदों का ज्ञान ईष्वर से मनुश्यों को कैसे प्राप्त हुआ इसका समाधान उन्होंने अपनी विष्व प्रसिद्ध पुस्तक **"सत्यार्थ प्रकाष"** में सविस्तार किया है। यहां इतना कहना ही समीचीन है कि ईष्वर जीवात्मा के भीतर भी अपने सर्वान्तर्यामी स्वरूप से हर देष व काल में विद्यमान रहता है और प्रेरणा द्वारा वह जीवात्माओं को ज्ञान देता है। **जो जीवात्मायें जितनी अधिक पवित्र होगीं, ईष्वर की प्रेरणा को समझना उनके लिए उतना ही सरल होता है।** चारों ऋशि अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा पवित्रतम् जीवात्मायें थी, अतः उन्होंने ईष्वर द्वारा प्रदत्त ज्ञान को प्राप्त कर उन्हें अपनी आत्माओं में स्थिर कर सुरक्षित रूप से धारण कर लिया। इन वेदों में मनुश्य जीवन के प्रत्येक पहलु पर बहुत उपयोगी ज्ञान दिया गया है। **इस वेद ज्ञान से मनुश्य की सम्पूर्ण आध्यात्मिक व भौतिक उन्नति होती है। अतः इसका मानव मात्र में प्रचार किया जाना अति आवष्यक व समीचीन है।** वेदों का महत्व इस कारण भी है कि संसार के सभी मत सम्प्रदाय मनुश्यों को समीप लाने के स्थान पर एक दूसरे से दूर कर रहे हैं। अपने स्वार्थ के लिए मनुश्यों में साम्प्रदायिकता का विश घोलते हैं। दूसरे मत के लोगों का धर्मान्तरण करने के मंसूबे रखते हैं। ऐसे मत भी हैं जो येन–केन–प्रकारेण ध र्मान्तरण के लिए सब कुछ जायज मानते हैं जिसमें प्रलोभन, डर, भय व तलवार का प्रयोग भी सम्मिलित है। इतिहास में इसके अनेकों उदाहरण हैं। दूसरी ओर आम जनता भोली होने के कारण इन मत–पन्थों के गुरूओं के जाल में फंस जाती है और उसका लोक व परलोक दोनों नश्ट हो जाता है।

लोगों के द्वार व निवास तक वेदों को पहुंचाना समय की आवष्यकता है। महर्शि दयानन्द का यही स्वप्न था जिसे आर्य व उनके अनुयायियों को सफल करना है। आम आदमी के पास धर्म–कर्म को जानने व समझने के लिए समय नहीं है। अतः आवष्यकता है कि वेद प्रचारक उसके जन–सामन्य के दरवाजे पर पहुचें। इसके लिए आर्य समाज के सदस्यों को मोहल्ला, झुग्गी–झोपड़ी व कालोनी प्रचार का कार्यक्रम बनाना चाहिये। रविवार को सत्संग के बाद आर्य समाज के सदस्य टोलियां बना कर किसी गली–मोहल्ले या झुग्गी–झोपड़ियों में निकल जायें। उनके पास पर्याप्त संख्या में प्रचार सामग्री अर्थात् सत्यार्थ प्रकाष व लघु पुस्तकें होनी चाहिये। वह किसी मोहल्ले में जाकर एक–एक कर प्रत्येक व्यक्ति के घर पर जायें और वेद के महत्व को बतायें। उन्हें बतायें कि कब सोना व सोकर उठना है तथा दिन के समय का विभाजन छोटे व बड़ें लोगों का किस प्रकार का होना चाहिये। **उन्हें स्वाध्याय का महत्व बता कर स्वाध्याय किन–किन पुस्तकों का करना चाहिये, यह भी बताना होगा।** अच्छे स्वास्थ्य के लिए समय पर सोना और जागना अनिवार्य है। भोजन षुद्ध षाकाहारी व पुश्टिकारक होना चाहिये। यथासम्भव दूध व फलों का प्रयोग भी करना चाहिये। भोजन में हरी तरकारियां अवष्य लेनी चाहियें। प्रातः

ఆర్య జీవన్

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆంధ్రప్రదేశ్, 4 - 2 - 15
మహర్షి దయానంద మార్గము
సుల్తాన్ బజార్, హైదరాబాద్ - 500 095
ఫోన్ : 040 - [illegible]
సంపాదకులు - విఠల్‌రావు ఆర్య, ప్రధాన్ సభ

सायं सन्ध्या करनी चाहिये और सन्ध्या व अग्निहोत्र–हवन की विधि की पुस्तक उन्हें देकर उसका प्रदर्षन व डैमो भी देना चाहिये। उन्हें यह हष्दयंगम् कराना है कि सत्यार्थ प्रकाष, आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों के स्वाध्याय से उनका ज्ञान बढ़ेगा और इससे उन्हें अपने जीवन के सभी पक्षों को सफल सिद्ध करने में सहायता मिलेगी। उन्हें आत्मीयता के साथ आर्य समाज का सदस्य बनने की प्रेरणा दी जानी चाहिये। **यह षिक्षा भी उन्हें देनी है कि मनुश्य जन्म से नहीं अपितु अपने कर्मों से महान बनता है।** हममें से कोई भी राम, कष्ृण, दयानन्द आदि बन सकता है। इस प्रकार से जन–सामान्यों व उनके परिवारों में जाकर उन्हें षिक्षित करना है। आर्य समाज के सदस्यों का यह भी कर्तव्य है कि वह साप्ताहिक या पाक्षिक रूप से उनसे मिलते रहें और उनका कुषल–क्षेम पूछने के साथ उनकी दिनचर्या भी जानकर उसमें अपना परामर्ष आदि देकर उनके उत्थान का प्रयत्न करते रहें। **यह ध्यान में रखना है कि वह व्यक्ति आर्य समाज से जुड़ा रहे।** यदि सम्भव हो तो मोहल्ले में ही साप्ताहिक सत्संग हेतु आर्य समाज की एक इकाई का गठन कर देना चाहिये और मुख्य आर्य समाज का एक प्रतिनिधि उस पर निगरानी रखते हुए उसकी प्रगति की समीक्षा करता रहे। उपदेष, प्रवचन, मौखिक प्रचार व साहित्य का वितरण, यही सबसे अधिक प्रभावषाली प्रचार के साधन हैं, इनका हमें उपयोग करना है। ऐसा करने पर स्थिति में साकारात्मक परिवर्तन अवष्य आयेगा।

सबसे बड़ी बात यह है कि हमें आषावादी बन कर प्रचार करना है तथा निराषा के विचारों को किंचित स्थान नहीं देना है। दीप से दीप जले की भांति यदि हमने एक या अधिक व्यक्तियों को प्रभावित कर दिया तो इससे आर्य समाज के वेद प्रचार के कार्यों को बल मिलेगा और देष व समाज की तस्वीर बदलेगी।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
की अंतरंग बैठक
उत्साहपूर्ण वातावरण में संपन्न

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अंतरंग बैठक उत्साहपूर्ण वातावरण में संपन्न जोश–खरोश के साथ 13–14 सितम्बर, 2014 को शालीमार बाग आर्य समाज में साधारण सभा को नये दृष्टिकोण के साथ संपन्न करने का निर्णय देश भर में आर्य समाजों को संगठित कर नई दिशा देने का संकल्प साधारण सभा के सदस्य दिल्ली पहुचें। साधारण अधिवेशन में गणमान्य संन्यासी और विद्वान भी भाग लेंगे। देश में उभरते हुए सून्य को

केवल आर्य समाज ही भर सकता है बस दृढ़ संकल्प और लम्बे संघर्ष के लिए तैयार होने की जरूरत है। चित्रों में सभा प्रधान स्वामी आर्यवेश जी, महान संन्यासी स्वामी अग्निवेश जी, सभा महामंत्री प्रो. विट्ठल राव आर्य एवं स्वामी प्रणवानंद आदि देखे जा सकते हैं।

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR

संपादकः श्री विट्ठल राव आर्य प्रधान सभा ने सभा की ओर से
आकृति प्रेस चिक्कडपल्ली में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया। प्रकाशकः आर्य प्रतिनिधि सभा आं.प्र.सु.बाज़ार,हैदराबाद